नागरिक स्वाधीनता



राममनोहर लोहिया

नागरिक स्वाधीनता का मोरचा एक खास मोरचा है, जो जनता को जगाये रखता है और उसकी कमर सीधी रखता है। उसे झुकने नहीं देता। इससे जनता में अन्याय का मुकाबला करने की भावना बनी रहती है। आदमी को इस बात से बल और उत्साह मिलेगा कि पुलिस और प्रशासन के अत्याचार का अगर उसने विरोध किया तो दूसरों की दिलचस्पी जगेगी और उनका साथ मिलेगा। इस तरह की चेतना जनता में अपनी नागरिक स्वाधीनता के हनन के खिलाफ अभूतपूर्व जागृति पैदा करती है, सारा राष्ट्र हिल जाया करता है। लोग सतर्क रहना सीखते हैं और इस तरह अपनी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

–राममनोहर लोहिया

दो शब्द

इस पुस्तिका के दोनों लेख—'नागरिक स्वाधीनता क्या है' और 'भारत में नागरिक स्वाधीनता की अवस्था' 1936 में प्रकाशित अंग्रेजी पुस्तक 'द स्ट्रगल फार सिविल लिवरटीज' (नागरिक-स्वाधीनता का संघर्ष) से अनूदित हैं। समाजवादी नेता डॉ0 राममनोहर लोहिया ने अखिल भारतीय कांग्रेस के विदेश विभाग के सचिव रहते इस पुस्तक को लिखा था और कांग्रेस के विदेश-विभाग ने 1936 में इसे पं0 जवाहरलाल नेहरू की भूमिका सहित (देखें परिशिष्ट) प्रकाशित किया था।

ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध नागरिक और आजादी की लड़ाई में शहीदों की कुर्बानी के बाद विभाजित देश के संविधान में नागरिक और व्यक्ति स्वाधीनता के अधिकारों तथा अन्य अधिकारों को लिपिबद्ध किया गया। आज आजादी के 30 वर्ष बाद नयी बालिग तरुण शक्ति द्वारा गठित संविधान सभा के माध्यम से इन अधिकारों को, रोजगार और भोजन प्राप्त करने के मौलिक अधिकार जैसे अधिकार जोड़कर और व्यापक और ठोस बनाने के बजाय उन्हें लोकतंत्र और समाजवाद के नाम पर संकुचित व कुंठित किया जा रहा है।

सच्चे लोकतांत्रिक समाजवादियों का यह मत है कि आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र और राजनीतिक लोकतंत्र के बिना आर्थिक और सामाजिक लोकतंत्र एक व्यक्ति या पार्टी की तानाशाही बन जाता है। इसका मजाक उड़ाते हुए कम्युनिस्ट सिद्धान्तशास्त्री कहा करते थे कि भूखे पेट से लोकतंत्र का कोई वास्ता नहीं है। लेकिन आज कम्युनिस्ट भी यह कहने को मजबूर हुए हैं कि लोकतांत्रिक अधिकार न रहने पर किसान, मजदूर, छात्र, मध्यवर्ग और साधारण जनता के पेट की लड़ाई चलायी नहीं जा सकती।

इस पुस्तक की उपयोगिता और सार्थकता इसी बात में होगी कि हमारी भविष्य की पीढ़ियाँ इस सत्य को हृदयंगम करेंगी कि देश में पेट की लड़ाई चलाने एवं समता, सम्पन्नता व समृद्धि लाने के लिए नागरिक और व्यक्ति स्वाधीनता अनिवार्य है।

निवेदक,

12 अक्टूबर 1976 **दिनेश दासगुप्त**

नागरिक स्वाधीनता क्या है?

नागरिक स्वाधीनता (सिविल लिबरटीज) क्या चीज है? यह जानने के लिए हमें उसके सैद्धांतिक स्वरूप, उसकी उत्पत्ति और उसकी वर्तमान स्थिति पर विचार करने के साथ यह भी सोचना होगा कि उसकी हिफाजत के वास्ते क्या-क्या किया जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि नागरिक स्वाधीनता के बारे में हमें चार बातों पर विचार करना है– (1) नागरिक स्वाधीनता कितने प्रकार की होती है; (2) उसकी उत्पत्ति किस प्रकार हुई; (3) उस पर आज किस प्रकार और क्यों प्रहार हो रहा है; (4) उसकी हम किस प्रकार हिफाजत कर सकते है और हमें उसकी हिफाजत क्यों करनी चाहिए। इन चार बातों पर विचार करने से हमें इस सवाल का जवाब मिल जायेगा कि नागरिक स्वाधीनता क्या है अर्थात् उसकी अवधारणा क्या है?

नागरिक स्वाधीनता कितने प्रकार की होती है? यह जानने के लिए हमें राज्य निर्माताओं की युगांतरकारी घोषणाओं और मूल कानूनों व अदालती फैसलों के बुनियादी सिद्धान्तों को एक साथ पिरोना पड़ेगा। ये घोषणाएँ और सिद्धांत नागरिक स्वाधीनता के विभिन्न प्रकारों को निर्धारित और स्पष्ट करते हैं। नागरिक स्वाधीनता के विभिन्न प्रकारों में सबसे ऊपर जिस स्वतंत्रता का नम्बर आता है, वह है– व्यक्ति की स्वतंत्रता, आवागमन की स्वतंत्रता तथा घर की पवित्रता की स्वतंत्रता। 1789 के फ्रांसीसी संविधान में कहा भी गया है कि राज्य का उद्देश्य आदमी के प्राकृतिक या मूल (नैचुरल) अधिकारों की हिफाजत करना है। ये अधिकार हैं—'व्यक्तिगत सुरक्षा का अधिकार, सम्पत्ति का अधिकार और दमन व अत्याचार का प्रतिकार करने का अधिकार।' इन अधिकारों से यह प्रकट है कि किसी भी नागरिक को कानून की उपयुक्त और उचित प्रक्रिया चलाये बिना गिरफ्तार, नजरबंद और कैद नहीं किया जा सकता। कानून की इन प्रक्रियाओं में धीरे धीरे जूरी की खुली अदालत की व्यवस्था भी शामिल कर ली गयी है। यही नहीं, यह भी तय किया गया है कि जूरी बनाये जाने वाले लोगों में से ज्यादातर लोग उसी वर्ग के होंगे जिसका कि अभियुक्त है। हर आदमी अपने घर में निरापद और निश्िंचत रह सकेगा। उसके घर पर छापा

नहीं मारा जा सकता और न ही तलाशी ली जा सकती है। कानून तोड़ने से सुनिश्चित और सुस्पष्ट अभियोग के बिना उसके घर पर छापा नहीं मारा जा सकता और न ही तलाशी ली जा सकती है। देश के भीतर आने-जाने और घूमने तथा विदेश जाने के लिए पासपोर्ट प्राप्त करने की उसकी स्वतंत्रता पर किसी भी प्रकार का प्रतिबंध नहीं लगाया जा सकता।

आज के जन-जागरण और महान जनान्दोलनों के युग में विचार व मत प्रकट करने और सभा करने की स्वतंत्रता उतनी ही महत्वपूर्ण व जरूरी है जितनी की व्यक्तिगत सुरक्षा और घर की पवित्रता की स्वतंत्रता। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के बारे में, जिसका मतलब बोलने और छापने की आजादी है, यह अमरीकी उक्ति सर्वमान्य और मापदण्ड है कि– अगर आदमी विद्रोह की प्रकट कार्रवाई न करे तो उसे उग्र से उग्र और क्रांतिकारी से क्रान्तिकारी अभिमत व्यक्त करने पर भी कोई सजा नहीं दी जा सकती। इसी तरह सभा और जलूसों के बारे में यह ब्रिटिश सिद्धांत सर्वमान्य है कि—अगर ट्राफिक में बहुत ज्यादा बाधा न पड़े तो पुलिस या प्रशासकीय अधिकारी सभा और जलूस को रोकने की कोई कार्रवाई नहीं कर सकते। इन सिद्धान्तों का मतलब राजद्रोह के कानूनों का खात्मा और प्रेस, पुस्तकों चिट्ठियों और रेडियो पर सेंसरशिप का न होना होता है। सभाओं और जलूसों पर रोक नहीं लगायी जा सकती। नगरों और गाँवों के सार्वजनिक स्थानों में सभा करने का हरेक व्यक्ति को समान अधिकार है।

व्यक्ति और विचार व मत की स्वतंत्रता के साथ संगठन बनाने की स्वतंत्रता (फ्रीडम आफ एसोसिएशन एण्ड आररोनाइजेशन) का महत्व आज बहुत बढ़गया है। यह जरूरी है कि ज्यादा से ज्यादा लोग राज्य के किया-कलापों और आर्थिक प्रबन्ध व व्यवस्था में अपनी गहरी दिलचस्पी को संगठित प्रयास का रूप दें। ताकि मौजूदा बुराइयाँ दूर हों। इसलिए उन्हें किसी भी हालत में संगठन बनाने और हड़ताल व पिकेटिंग करने की स्वतंत्रता से वंचित नहीं किया जा सकता। यह एक अत्यन्त कीमती स्वतंत्रता है। प्रशासन अक्सर यह दुहाई देगा और प्रचार करेगा कि इस तरह के संगठनों और हड़तालों से अन्ततः शांति भंग होगी और क्रान्तिकारी

मनोवृत्ति को बढ़ावा मिलेगा। वह इस कीमती स्वतंत्रता को छीनने की कोशिश करेगा। उसकी ऐसी कोशिशों का प्रतिकार और परदाफाश करना होगा। संगठन बनाने और हड़ताल करने की स्वतंत्रता से, अगर वह प्रकट रूप में विद्रोह की कार्रवाई का रूप न लेती हो तो किसी भी हालत में छेड़छाड़ बरदाश्त नहीं की जा सकती।

'कानून सार्वजनिक इच्छा (जनता की इच्छा) की अभिव्यक्ति हैं, यह 1789 के फ्रांसीसी संविधान की एक घोषणा है। राज्य की सत्ता का उत्स जनता में है; जनता की इच्छा से ही राज्य को सत्ता मिलती है। इसलिए जनता को सरकार पर नियंत्रण रखने का अधिकार है। इस अधिकार को ही लोकतांत्रिक नियन्त्रण कहा जाता है। इसलिए सरकार पर जनता के लोकतांत्रिक नियन्त्रण का अधिकार एक अत्यन्त महत्वपूर्ण नागरिक स्वतंत्रता है। इसका मतलब यह भी होता है कि सरकार गुप्त रूप से काम नहीं कर सकती और न ही वह लोकतांत्रिक रूप से निर्वाचित संसद की अनुमति बिना कुछ कर सकती है। दुनिया के नागरिक स्वाधीनता यूनियनों (सिविल लिबरटीज यूनियनों) ने अपने आंदोलन के घोषणा पत्रों में सरकार पर किसी न किसी प्रकार के लोकतांत्रिक नियंत्रण की बात कही है।

अन्तःकरण या विवेक, विचार और शिक्षा की स्वतंत्रता को मन की स्वतंत्रता का ही एक अंग माना जाता चाहिए। इस स्वतंत्रता पर विशेष रूप से जोर दिया जाना चाहिए क्योंकि सरकारी और अर्द्ध–सरकारी संस्थाओं के भीतर ही इससे सबसे ज्यादा छेड़छाड़ होती है। अगर किसी प्राध्यापक या शिक्षक को प्रशासन के प्रतिकूल राय रखने पर बरखास्त कर दिया जाय और राज्य साम्प्रदायिक व जातीय संस्थाओं को बढ़ावा देने लगे तो यह अन्तःकरण, विचार और शिक्षा की स्वतंत्रता पर ऐसा सीधा प्रहार है, जिसके विरूद्ध किसी प्रकार की सुनवाई की भी गुंजाइश नहीं रहती।

राजनीतिक बंदियों की रिहाई की माँग नागरिक स्वाधीनता का एक और पहलू है। अभियुक्तों को ज्यादातर ऐसे कानूनी और न्यायिक तंत्र के आधार पर दोषी ठहराया जाता है जो सरकार और नागरिक के बीच सरकार की ही तरफदारी करता है। जाहिर है कि इस तंत्र से लड़ने का मतलब इसके

द्वारा सताये गये लोगों की रक्षा करना भी होगा। लिहाजा राजनीतिक बंदियों की रिहाई की माँग नागरिक स्वाधीनता की ही एक माँग है और रिहाई न होने तक बंदियों के खाने, पीने रहने और पढ़ने से सम्बन्धित अधिकारों के लिए लड़ते रहना आवश्यक है।

आशा है कि नागरिक स्वाधीनता का सैद्धांतिक स्वरूप और दायरा अब स्पष्ट हो गया। नागरिक स्वाधीनता होने का मतलब यह है कि एक नागरिक को जीने की निरापदता और निश्चिंतता प्राप्त करने के अधिकार के साथ बोलने, लिखने, छपाने, संगठन बनाने, सभा करने, समान न्याय प्राप्त करने, सरकार पर नियंत्रण रखने और राजनीतिक कार्यों के लिए अपराधी न ठहराये जाने के अधिकार प्राप्त होंगे।

नागरिक स्वाधीनता की उत्पत्ति कैसे हुई? नागरिक स्वाधीनता की अवधारणा, नागरिक और राज्य के बीच अनन्त काल से चलते आ रहे संघर्ष से जन्मी है। इतिहास इस बात का गवाह है कि राज्य और उसके कानूनों ने नाना प्रकार की विकृतियों और सत्ता के दुरुपयोग को जन्म दिया है। चाहे कमर तोड़ देने वाला कर विधान (टैक्स सिस्टम) हो या खून का प्यासा जमींदार अभिजात तंत्र हो, नागरिक इनकी मार से कराहता रहा है और प्रतिकार करने की कोशिश भी करता रहा है। उस पर युद्ध थोपे गये हैं और उसकी संस्कृति को निस्तेज किया गया है। वह इनको समाप्त करने की भी कोशिश करता रहा है। अत्याचार और बुराइयों को समाप्त करने के प्रयासों का जबाब और भी ज्यादा दमन और अत्याचार करके दिया गया है। सत्ता के दुरुपयोग और उसकी बुराइयों से लड़ने का ही मतलब अवज्ञा हो जाता है, जिसे राज्य बरदाश्त नहीं करना चाहता। नागरिक सत्ता का कोपभाजन बनता है। उसे तनहा कैद रखा जाता है। जेल में लम्बे अरसे तक सड़ाया जाता है और फाँसी भी दी जाती है। उसके पास जो कुछ मूल्यवान होता है वह छीन लिया जाता है; इसलिए नागरिक को हमेशा इस बात की जरूरत महसूस हुई है कि सत्ता के दुरुपयोग और अपने युग की बुराइयों की आलोचना करने और उन पर हमला करने के लिए उसे सलामत रहने का कोई न कोई अल्पतम आधार प्राप्त करना चाहिए। विभिन्न देशों के मूल

और साधारण कानूनों में सरकार के मुकाबले नागरिकों को जो अधिकार दिये गये हैं, वे इस तरह की सलामती के अल्पतम आधार की ही अभिव्यक्ति हैं। अगर शासन नागरिक स्वाधीनता का सम्मान करता है तो दमन का प्रतिकार भयावह स्थिति उत्पन्न नहीं करता। प्रतिकार के नतीजे भयानक नहीं होते।

यहाँ पर याद रखना उचित होगा कि अमरीकी और फ्रांसीसी संविधानों तथा इंगलैड के अधिकार-घोषणा पत्र (बिल आफ राइट्स 1689) का जन्म किस प्रकार हुआ। इन सभी देशों में इनके जन्म के पहले दमन, सामाजिक बुराइयाँ तथा रुपये-पैसों का दुरुपयोग बहुत ज्यादा बढ़गया था। लोगों को डराने और तत्कालीन स्थिति को स्वीकार कराने के लिए बास्तेल (राजनीतिक तथा अन्य बंदियों को रखने के लिए 14वीं सदी में पेरिस में बनायी गयी किलानुमा जेल, इसको 14 जुलाई 1789 को फ्रांसीसी जनता ने हमला कर नष्ट कर डाला। बास्तेल का पतन फ्रांस में राजतंत्र की समाप्ति और फ्रांसीसी क्रांति की शुरूआत माना जाता है। 14 जुलाई को फ्रांसीसी अपना राष्ट्र दिवस मनाते हैं।) जैसी जेलें बनायी गयीं। जब जनता ने राज्य और उसके अत्याचारी आर्थिक और सामाजिक कानूनों पर जोरों से प्रहार कर उन्हें समाप्त करने की शक्ति अर्जित कर ली तो उसने बास्तेल तथा उस जैसी जेलों को नष्ट कर दिया। बास्तेल और उसकी जैसी जेलों के भग्नावशेष पर नागरिक स्वाधीनता की शानदार इमारत खड़ी की गयी। यह अत्याचार और उत्पीड़न की स्थायी स्मृति के खिलाफ आदमी की ढाल है। नागरिक स्वाधीनता अत्याचार और उत्पीड़न को समाप्त करने की मूल शर्त है।

नागरिक स्वाधीनता समाज की प्रगति के मार्ग को सहज व सुगम बनाती है। समाज प्रगति और प्रतिगामिता के बीच हिजकोले खाता रहता है और अक्सर जड़ता का शिकार हो जाता है। इस खींचतान में राज्य ज्यादातर जड़ता और प्रतिगामी शक्तियों से संचालित व नियंत्रित होता है। हाँ, कभी-कभी इस दिशा में थोड़ा व्यतिक्रम तब होता है जब कल तक के विद्रोही सत्तारूढ़होने के प्रारम्भिक दिनों मे राज्य-शक्ति का प्रगति के साधन

के रूप में इस्तेमाल करते हैं। लेकिन ये ही कल तक के विद्रोही कुछ ही दिनों में परिवर्त्तन से घृणा करने लगते हैं और राज्य की ताकतवर मशीन वंचित लोगों के प्रगतिशील प्रयासों को रोकने लगती है। राज्य प्रगति के प्रयत्नों को रोकता न रहे और निरतंर दमन से उसमें बाधा न डाले इसके लिए राज्य की सर्वग्रासी सत्ता को नियंत्रित करना और उसको स्पष्ट रूप से निर्धारित करना आवश्यक है। नागरिक स्वाधीनता की सारी परिकल्पना ही राज्य की शक्ति को स्पष्ट रूप से निर्धारित करने और उसे मर्यादित करने के प्रयत्नों का परिणाम है। इससे ही व्यवस्थित और अनुशासित ढंग से प्रगति संभव है और समाज को निरकुंश अत्याचारी शासन और क्रान्ति के बीच झूलते रहने से बचाया जा सकता है। इस तरह हम देखते हैं कि नागरिक स्वाधीनता की अवधारणा मुख्य रूप से एक उदारवादी (लिबरल कांसेप्ट) अवधारणा है, जो राज्य की तानाशाही और जन विद्रोह के बीच के क्रूर संघात के धक्के को सँभालने का काम करती है। यह समाज को व्यवस्थित, शांत और अनुशासित रूप से आगे बढ़ने में मदद करती है। अगर कोई नागरिक स्थिति से असन्तुष्ट है और उसकी आलोचना करना चाहता है तो समाज उसे निर्भय होकर सवाल करने, परीक्षा लेने और सुधार करने की इजाजत देता है। उसे किसी प्रकार के दण्ड का भय नहीं रहता।

आज नागरिक स्वाधीनता पर क्यों हमला हो रहा है? इसका जवाब एकदम हमारे सामने है। हमारी आँखों के आगे यथास्थिति और प्रतिगामिता की शक्तियों तथा परिवर्तनकामी शक्ति के बीच एक विश्वव्यापी और भीषण लड़ाई छिड़ी हुई है। गुलाम देश हों या साम्राज्यवादी देश (की जनता), सब में मौजूदा आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था की आलोचना हो रही है और विद्रोह का झंडा उठाया जा रहा है। मौजूदा व्यवस्था का मतलब निरंतर बेकारी बढ़ना, रहन-सहन के स्तर का गिरना और सांस्कृतिक अवनति है। यही नहीं, इसका मतलब गुलाम देशों की जनता का निरंतर अपमान और पाशविक युद्धों का जारी रहना भी है। सारी दुनिया आज एक विराट प्रश्न-चिह्न सरीखी बन गयी है। पुराने सामाजिक ढाँचे बेकार साबित हो रहे हैं। गुलाम देशों की जनता तथा दुनिया भर के उत्पीड़ित और सताये जानेवाले

लोग वैकिल्पक समाज की कल्पना कर रहे हैं। राज्य मौजूदा सामाजिक ढाँचे को कायम रखने के लिए सचेष्ट है और वैकल्पिक समाज की माँग का जबाब गिरफ्तारियों और प्रतिबंधों से दे रहा है।

राज्य-शक्ति का सबसे ज्यादा प्रहार गुलाम देशों के स्वतन्त्रता आन्दोलनों और दुनिया की समाजवादी और कम्युनिस्ट पार्टियों पर हो रहा है। उन पर मार सबसे ज्यादा पड़ रही है क्योंकि वे साम्राज्यवादियों को हटाने की कोशिश कर रहे हैं और दुनिया के मजदूर और किसानों की माँगें रख रहे हैं। उनके खिलाफ यथास्थितिवाद, पूँजीवाद और जमींदार अभिजात तंत्र की शक्तियाँ अड़ी हुई हैं। सरकारें नागरिक स्वाधीनता के सिद्धांत की बेहयाई से धता बता रही हैं और अपनी निर्धारित सत्तासे भी आगे बढ़कर दमन और अत्याचार कर रही हैं। इस तरह नागरिक स्वाधीनता पर हमला करना राज्य और पूँजीवाद तथा सामंतवाद का एक स्थायी काम हो गया है।

यहाँ हमारे देश में हाल में नागरिक स्वाधीनता का धार्मिक, राजनीतिक और आर्थिक रूपों में वर्गीकरण करने का जो प्रयत्न हो रहा है उस पर विचार करना उचित होगा। जाहिर है कि ऐसा वर्गीकरण एकदम भ्रांत धारणा पर आधारित है। नागरिक स्वाधीनता धार्मिक या राजनीतिक या आर्थिक नहीं होती। उसका ऐसा वर्गीकरण नहीं किया जा सकता। नागरिक स्वाधीनता का सवाल तभी उठता है जब राज्यसत्ता अपने आचरण या अनाचरण से (कार्रवाई कर या मौन रह कर) नागरिकों के अधिकारों की हिफाजत नहीं करती। नागरिक स्वाधीनता का उल्लंघन तभी होता है जब राज्य खुद नागरिकों के विचार व मत प्रकट करने की स्वतन्त्रता और सभा व संगठन की स्वतंत्रता पर हमला करता है या गुण्डों को ऐसा करने की इजाजत देता है। इस प्रकार की सरकारी हिंसा और गुण्डई के पीछे मुख्य रूप से आलोचना का और मौजूदा कानूनों व सरकार के प्रति विद्रोह का भय रहता है।

नागरिक स्वाधीनता का उल्लंघन किस प्रकार होता है? अव्वल तो नजरबन्दी, घर तलाशी, राज-द्रोह और सभा संगठन सम्बन्धी कानूनों और

दण्ड विधान से यह उल्लंघन होता है। लगभग सारी दुनिया भर में ये कानून तथा दण्ड विधान नागरिक स्वाधीनता की मूल प्रतिश्रुतियों (गारण्टियों) के प्रतिकूल हैं। वे या तो खुलमखुल्ला दमनकारी होते हैं या जान-बूझ कर अस्पष्ट रखे जाते हैं। बहरहाल दोनों ही स्थितियों में वे नागरिक को प्रशासन की मनमरजी या सनक का शिकार बनाते हैं। दूसरे, दुनिया भर की सरकारें और न्यायिक प्रशासन इस बात की लगातार चेष्टा कर रहे हैं कि स्वाधीनता और न्याय से पराजित होकर उन्होंने जो कुछ खोया है उसे फिर से प्राप्त करें। इसके लिए वे हर तरह के तरीके अपनाते हैं। न्याय के नाम पर अक्सर बहुत कड़ाई की जाती है और उसका गलत प्रयोग किया जाता है। अपराध और सजा के बीच कोई सामंजस्य नहीं रहता; सजा अपराध के अनुपात में बहुत ज्यादा सख्त होती है। प्रशासन ऐसे फरमान जारी करता है, जिन्हें विधिवत् गठित कानूनी अदालतों में उचित सिद्ध नहीं किया जा सकता। इसके अलावा प्रशासन अनुदान या खैरात बाँट कर जनता को भ्रष्ट करने की कोशिश करता है। आतंक फैला कर और गुप्त कार्रवाइयों द्वारा उसे भयभीत करने की कोशिश करता है। तीसरे, जनता की नजरों से दूर पुलिस के गुप्त तहखानों में अत्याचार किया जाता है और यातना दी जाती है। पुलिस अक्सर कानून की निर्धारित सीमा से बढ़कर काम करने लगती है। गैर कानूनी नजरबंदी, जबरन हासिल किये गये कबूलनामों और धमकियों का सिलसिला जोरों से चलने लगता है। चौथे, राज्य या निहित स्वार्थों के आश्रय में गुण्डई और हिंसा को पनपने दिया जाता है। यह खास तौर पर गाँवों में होता है। इस तरह के उल्लंघनों के चलते नागरिकों के सभा करने, संगठन बनाने और पुस्तकों, अखबारों तथा रेडियो के माध्यम से अपने मत का प्रचार करने के अधिकारों का हनन किया जाता है। नागरिक हर तरह से सताया जाने लगता है क्योंकि उसको सताना आसान हो जाता है– उसे नौकरी से बरखास्त कर दिया जाता है, पुलिस उसको यातना देने लगती है, उसको कैद कर लिया जाता है और उसे कड़ी से कड़ी सजा दी जाती है।

नागरिक स्वाधीनता की हिफाजत कैसे की जाय? दुनिया के नागरिक स्वाधीनता यूनियनों ने शाखाओं और स्थानीय प्रतिनिधियों का कुशल

संगठन बनाया है, जो नागरिक स्थाधीनता के कानूनी, न्यायिक और प्रशासकीय उल्लंघनों तथा पुलिस अत्याचार के तहत गुण्डई की घटनाओं का प्रचार करता है। प्रत्येक घटना की और व्यक्तियों के मामलों की फाइल रखी जाती है। सताये गये व्यक्तियों की तरफ से अधिकारियों से बातचीत कर उन पर दबाव डालने की कोशिश की जाती है। प्रमुख लेखकों, वकीलों, वक्ताओं और गणमान्य स्थितियों को नागरिक स्वाधीनता की लड़ाई में आगे लाया जाता है। उनकी मदद से यूनियन का राष्ट्रीय सदर मुकाम किसी खास कानून को रद्द करने, किसी खास मामले में न्याय दिलाने, सार्वजनिक और खुली जाँच करने, खुले मुकदमे चलाने और नजरबन्द तथा राजनीतिक कैदियों की रिहाई की मांगों को लेकर राष्ट्रीय अभियान छेड़ता है। यूनियन अभियुक्तों के बचाव और उनकी कानूनी सहायता का भी प्रबंध करते हैं। यूनियन का प्रचार-संगठन विज्ञप्तियाँ जारी करता है और पुस्तिकाएँ व परचे निकालता है।

नागरिक स्वाधीनता की हिफाजत क्यों की जाय? जाहिर है कि यह सवाल ही एकदम बेहूदा और गलत है। लेकिन ऐसा नहीं है कि यह सवाल न किया जाता हो। ऐसे सवाल किये जाते हैं—हम आपकी नागरिक स्वाधीनता के लिए क्यों लड़ें? क्या आप सत्तारूढ़होने पर हमें इसकी गारण्टी देंगे? यही नहीं, उन लोगों को, 'जिनकी नागरिक स्वाधीनता का हनन किया जा रहा है', सलाह दी जाती है कि वे नागरिक स्वाधीनता के आन्दोलन को तेज न करें और कभी-कभी तो बन्द करने तक को भी कहा जाता है। इस लफ्फाजी और सलाह का क्या मतलब है? इन दोनों का मतलब यथास्थिति को स्वीकार करना और सामाजिक प्रतिगामिता की शक्तियों के साथ हाथ मिलाना ही होता है। एक कट्टरपंथी प्रतिगामी ही इस तरह की चीज को मंजूर कर सकता है। यह एकदम स्पष्ट है कि कोई भी ऐसा आदमी जो व्यवस्थित और अनुशासित ढंग से प्रगति की कामना करता है नागरिक स्वाधीनता की लड़ाई में हिस्सा लिये बिना नहीं रह सकता। नागरिक स्वाधीनता की लड़ाई के मोरचे में सामान्य स्थिति में रूढ़िवादी से लेकर उदारतावादी तथा उग्रवादी व्यक्ति तक शामिल होंगे और सह-योद्धा

के रूप में लड़ेंगे।

एक और अजीब दलील दी जाती है, जो नागरिक स्वाधीनता की हिफाजत करने की विशेष आवश्यकता और महत्व को कम करती है। कुछ उग्रवादी यह कहते हैं कि नागरिक स्वाधीनता के लिए लड़ने का कोई खास फायदा या मतलब नहीं है क्योंकि अन्ततः सवाल राजनीतिक सत्ता का है—सत्ता किसके हाथों में हैं। मौजूदा व्यवस्था की आलोचना करने और उसे बदलने के लिए संगठित प्रयास करने पर हमारे चाहे-अनचाहे अत्याचार और दमन तो होगा ही। इसलिए मौजूदा सरकार को उलटे बिना नागरिक स्वाधीनता की गारण्टी हासिल नहीं की जा सकती। यह दलील अत्यंत भ्रामक है। यह सही है कि नागरिक स्वाधीनता की वास्तविक रक्षा एक भिन्न शासन व्यवस्था में ही हो सकती है लेकिन यह कहना कि उसके लिए लड़ना फिजूल है, एकदम गलत और बेमानी है।

नागरिक स्वाधीनता का मोरचा एक खास मोरचा है, जो जनता को जगाये रखता है और उसकी कमर सीधी रखता है। उसे झुकने नहीं देता। इससे जनता में अन्याय का मुकाबला करने की भावना बनी रहती है। आदमी को इस बात से बल और उत्साह मिलेगा कि पुलिस और प्रशासन के अत्याचार का अगर उसने विरोध किया तो दूसरों की दिलचस्पी जगेगी और उनका साथ मिलेगा। इस तरह की चेतना जनता में अपनी नागरिक स्वाधीनता के हनन के खिलाफ अभूतपूर्व जागृति पैदा करती है, सारा राष्ट्र हिल जाया करता है। लोग सतर्क रहना सीखते हैं और इस तरह अपनी प्रगति का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

नागरिक स्वाधीनता की लड़ाई उन राजनीतिक और सामाजिक बुराइयों का भी परदाफाश करती है, जो सभी प्रकार के दमन और अत्याचार का मूल स्रोत हैं। अमरीका के देहातों में जब नागरिक स्वाधीनता की लड़ाई ने जोर पकड़ा तो आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था सम्बन्धी तथ्य सामने आये, अन्यथा उनसे हम अनभिज्ञ रहते। नागरिक स्वाधीनता के उल्लंघन की किसी भी घटना की जाँच का ही यह मतलब हो जाता है कि उसके साथ उस खास बुराई की भी जाँच होती है जिसका नागरिक ने विरोध किया था

और जिसके चलते वह राज्य और अन्य स्वार्थों का कोपभाजन बना। इस तरह हम देखते हैं कि नागरिक स्वाधीनता की लड़ाई जनता में सामाजिक चेतना पैदा करती है।

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि नागरिक स्वाधीनता का मोरचा गुलामी से मुक्ति और प्रगति के मोरचे से ज्यादा व्यापक है और उसमें सभी तरह के लोग शामिल हैं। गुलामी से मुक्ति और प्रगति के लिए लड़ने वाले लोगों के बीच किन्हीं विषयों पर मतभेद रह सकते हैं लेकिन नागरिक स्वाधीनता के विषय में कोई मतभेद नहीं हो सकता और वे इसके लिए एक साथ लड़ते हैं। यही नहीं, उनके साथ ऐसे सभी लोग भी शामिल होंगे जो पूर्ण रूप से कट्टरपंथी नहीं हैं। इस तरह का व्यापक और विभिन्न विचारधारा के लोगों का संयुक्त मोरचा जनमत तैयार करने और राज्य पर ज्यादा प्रभाव डालने में समर्थ होता है।

यह कहना भी गलत है कि जब तक राज्य-सत्ता प्राप्त नहीं की जाती तब तक नागरिक स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। ऐसा तर्क यह मान कर चलता है कि जब तक राज्य-सत्ता अन्तिम रूप से परास्त नहीं होती तब तक वह मनमानी करती रहेगी। यह एक अतिरंजित कल्पना है जो काफी हद तक सच है लेकिन यह भी एक तथ्य है कि राज्य–सत्ता ऐसे काम करने से हिचकती भी है जिनसे उसे यह लगता है कि नतीजा उल्टा होगा और उसी पर आ पड़ेगी। इसलिए राज्य की व्यावहारिक व वास्तविक सत्ता को संकुचित करने का हर प्रयत्न किया जाना चाहिए। नागरिक स्वाधीनता की रक्षा के लिए सभी प्रकार की खाइयाँ खोदनी चाहिए और किले बनाने चाहिए। नागरिक स्वाधीनता के लिए किया जानेवाला आन्दोलन ऐसी ही एक खाई और एक किला है। हो सकता है कि आन्दोलन से सिर्फ जनमत ही मजबूत हो लेकिन यह भी संभव है कि राज्य को झुकना पड़े। इस तरह की काफी घटनाएँ हुई हैं जब जनता की अनवरत माँग के आगे प्रशासन या उसके अफसरों के पहले के आदेश रद्द किये गये हैं और राजनीतिक बन्दियों की रिहाई हुई है।

ऐसी बात नहीं कि नागरिक स्वाधीनता का सिर्फ हमारे देश या किसी

अन्य देश में ही उल्लंघन हो रहा है, दुनिया का बड़ा हिस्सा कमोवेश आज एक जेलखाना बन गया है। विश्व का जनमत आज नागरिक स्वाधीनता के हनन का पहले से कहीं ज्यादा प्रतिवाद करता है। कहीं भी जब नागरिक स्वाधीनता का उल्लंघन होता है तो विश्व जनमत तुरन्त उसके विरोध में संगठित रूप से आवाज उठाता है। राष्ट्रीय नागरिक स्वाधीनता यूनियनों को आपस में सूचनाओं और प्रचारात्मक साहित्य का आदान-प्रदान करना चाहिए।

आशा है कि अब यह स्पष्ट हो गया है कि नागरिक स्वाधीनता क्या है? यह राज्य की सत्ता को सुस्पष्ट मर्यादाओं के भीतर बाँधती है और नागरिकों को सुनिश्चित अधिकार प्रदान करती है, जिनकी रक्षा करना राज्य का कर्तव्य होता है। लेकिन राज्यों को अक्सर यह कर्तव्य नहीं भाता जिससे वे उसकी अवहेलना कर उलटे काम करते हैं। नागरिक स्वाधीनता के सिद्धांत रूपी हथियार से लैस जनता राज्य को अपनी सीमा के भीतर रहने के लिए बाध्य करने के वास्ते आन्दोलन करती है। नागरिक स्वाधीनता का आन्दोलन भले ही मौजूदा व्यवस्था को बदलने की माँग सीधे नहीं करता लेकिन वह इसके लिए रास्ता खुला रखने की कोशिश जरूर करता है।

परिशिष्ट-1

भारत में नागरिक स्वाधीनता की अवस्था

भारत में आज नागरिक स्वाधीनता के लिए प्रचंड संघर्ष कर रहा है। 1880 के दशक में आधुनिक भारत में नागरिक स्वाधीनता की लड़ाई पहले पहल इस सवाल पर शुरू हुई कि कानून की नजर में भारतीय और अंग्रेज समान हों। इल्बर्ट बिल में अंग्रेजों के साथ कानूनी पक्षपात को खत्म करने की व्यवस्था थी। अंग्रेज अफसर और व्यापारी वर्ग इस बिल से बहुत घबराया और उन्होंने इसके खिलाफ जबरदस्त अभियान छेड़ा। भारतीय जनता ने जवाब में भी बिल के पक्ष में जोरदार आन्दोलन शुरू किया। यह आन्दोलन देश में राजनीतिक अधिकारों की चेतना की शुरुआत था। इस

तरह नागरिक स्वाधीनता के आन्दोलन के साथ दबी-दबी आलोचना का युग समाप्त हुआ और प्रखर राष्ट्रीयतावाद के युग का प्रारम्भ हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद भारत में नागरिक स्वाधीनता का हनन जोरों से शुरू हुआ—रोलट ऐक्ट जिससे मानवीय अधिकारों तक पर प्रहार हुआ; जालियाँवाला बाग और पंजों पर सरकने जेसे आदेश देने के जघन्य कांड हुए। देश ने ब्रिटिश साम्राज्यवाद के शिकंजे से अपने को मुक्त करने के लिए जो पहला जनान्दोलन छेड़ा, उसको मुख्य रूप से रोलट ऐक्ट और नागरिक स्वाधीनता के हनन के खिलाफ हुए विद्रोह से ही प्रेरणा मिली। तब से आज तक एक भी ऐसा साल नहीं बीता है जबकि भारत की स्वातंत्र्य प्रेमी जनता ने सरकार के दमनकारी कानूनों और हथकंडों का विरोध न किया हो।

साधारण कानून भी, जिनसे जनता पर शासन किया जाता है, दुष्टतापूर्वक अस्पष्ट बनाये गये हैं और उनका इस्तेमाल दमन के लिए किया जाता है। राजद्रोह सम्बन्धी साधारण कानून को लें। इस कानून के तहत विचार स्वातंत्र्य और सरकार के प्रति घृणा फैलाने या उसकी निन्दा करने वाले विचारों की अभिव्यक्ति के मामले आते हैं और सजा दी जाती है। घृणा या निन्दा का क्या अर्थ है? ये दोनों शब्द अस्पष्ट हैं। इसलिए हम यह नहीं जानते कि वैध आलोचना और राजद्रोह फैलाने वाले उद्‌गारों के बीच कैसे फर्क किया जायेगा। यह तो मजिस्टरों पर छोड़ दिया गया है कि वे अपनी मनमरजी मुताबिक यह तय करें। यह कहा जाता है कि मजिस्टर लोग इस सिद्धान्त को मानते हैं कि सरकार की किसी खास नीति या कदम की आलोचना या विरोध तो हो सकता है लेकिन पूरी सरकार को दोषी ठहराना राजद्रोह कानून के तहत आता है। कब कोई आलोचना सरकार की खास नीति की आलोचना न रह कर पूरी सरकार को दोषी ठहराने वाली बन जाती है, यह मजिस्टर ही तय करता है। इस तरह हम देखते हैं कि प्रशासन और मजिस्टरी के आगे नागरिक लाचार है। उसके पास अपने विचार-स्वातंत्र्य के अधिकार की हिफाजत की कोई वैधानिक या कानूनी गारण्टी नहीं है। भले ही उसके उद्‌गारों से विद्रोह की कोई प्रकट कार्रवाई न हुई हो और न

ही यह जाहिर होता है कि उसका विद्रोह फैलाने का इरादा था तो भी उसे राजद्रोह सम्बन्धी कानून के तहत दण्डित किया जा सकता है। साधारण फौजदारी कानून की 107 धारा के तहत नागरिकों के सभा और संगठन के अधिकारों की भी यही स्थिति है— देहातों में संस्था बनाने की कोशिश करने पर यह कहकर बाधा डाली जाती है कि इससे झगड़ा-फसाद हो सकता है और शान्ति भंग हो सकती है। इसी तरह 144 धारा का मनमाना इस्तेमाल कर खास इलाकों पर और पाँच से ज्यादा आदमियों के इकट्ठा होने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है और इसका उल्लंघन दण्डनीय बना दिया जाता है। फौजदारी कानून की अन्य धाराएँ भी नागरिकों की मामूल से मामूली आजादियों के प्रतिकूल हैं और उन्हें पुलिस और प्रशासन की मनमानी के आगे लाचार बनाती हैं।

जब साधारण कानूनों की यह हालत हो तब भयानक एमरजेन्सी कानूनों का, (जिन्हें फौजदारी कानून संशोधन अधिनियम और सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम आदि के रूप में जाना जाता है) जनता की नागरिक स्वाधीनता पर शिकंजा कितना मजबूत होगा? यह सही है कि 1818 के राज्य बंदी विनियम (स्टेट प्रिजनर्स रेगुलेशन), 1867 के प्रेस अधिनियमों और 1919 के रोलट एक्ट जैसे एमरजेन्सी कानून अतीत में भी भारतीय प्रशासन के सामान्य अंग रहे हैं लेकिन आज इनका (एमरजेन्सी कानूनों) शिकंजा और भी ज्यादा मजबूत है। लखनऊ कांग्रेस के प्रस्ताव में कहा भी गया है, '1857 के महान विद्रोह के बाद भारतीय जनता की नागरिक और व्यक्तिगत स्वाधीनता का जितना दमन और हनन आज हो रहा है उतना पहले कभी नहीं हुआ था।'

कई प्रांतों में व्यक्तिगत सुरक्षा, निवास-स्थान की पवित्रता और आवागमन की स्वतंत्रता के अधिकार लगभग विलीन से हो गये हैं। बंगाल और पंजाब में लोगों को बिना मुकदमा चलाये अनिश्चित काल तक नजरबन्द रखना, इलाके से बाहर न जाने देना (इन्टर्नमेंट) और इलाके से निष्कासित किया जाना (एक्टर्नमेंट) आदि सामान्य हो गया है। बंगाल में जुलाई महीने में ही 2000 से भी ज्यादा लोगों को नजरबन्द किया गया है

और पंजाब में 40 समाजवादी कार्यकर्ताओं को अपने घर या गाँव से बाहर न निकलने का आदेश दिया गया है। बंगाल के ढाका और नारायण गंज में 12 वर्ष की उम्र और उससे ऊपर के लड़कों पर पाबंदी लगा दी गयी है कि वे सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच मैदानों, पार्कों और सार्वजनिक स्थानों में घूम-फिर नहीं सकते। इस पाबंदी को न मानने पर उन्हें 6 महीने तक की कैद हो सकती है। बंगाल में बहुत सारे युवकों को सूर्यास्त के बीच अपने घर से बाहर निकलने की इजाजत नहीं है। ऐसे लोगों की तो संख्या और भी ज्यादा है जिन्हें अपने शहर के बाहर जाने की इजाजत नहीं है। इन्हें दिन में एक बार पुलिस थाने में हाजिरी देने का भी अक्सर हुक्म दिया जाता है। दार्जिलिंग जाने के लिए पासपोर्ट लेना जरूरी है। मिदनापुर शहर और जिले के भीतरी इलाकों में साइकिल चलाने तक के लिए परमिट लेना जरूरी है। वारण्टसुदा तलाशी तो होती ही है, पुलिस अफसर अपनी मनमरजी से बिना वारण्ट के भी तलाशी लेते हैं। पुलिस अफसरों को किसी को भी संदेह में बहुत दिनों तक अपनी हिरासत में रखने के मनमाने अधिकार दिये जाने के कारण व्यक्तिगत सुरक्षा बहुत ज्यादा खतरे में पड़ गयी है। देश भर में पुलिस का रात-दिन किसी भी समय-असमय किसी के मकान में जाने और पूछताछ करने व परेशान करने की घटनाएँ सामान्य हो गयी हैं।

राजद्रोह, समुद्र चुंगी अधिनियम (सी कस्टम्स ऐक्ट) और सेंसर बोर्ड के साधारण कानून अपने में इतने काफी हैं कि उनसे विचार, मत और कला के प्रसार पर रोक लगती है। इनके अलावा सत्याग्रह और अन्य क्रान्तिकारी आन्दोलनों से निपटने के उद्देश्य से समय-समय पर जारी किये गये अध्यादेश हैं, जिन्हें देश के साधारण कानूनों में अधिनियमों के रूप में शामिल कर लिया गया है। भारतीय प्रेस अधिनियम और प्रांतीय प्रेस कानूनों ने प्रेस की स्वतंत्रता को मजाक बना डाला है। किसी अखबार या पत्रिका को प्रकाशित करने के लिए सरकार से पहले इजाजत लेनी पड़ती है और उनसे अच्छे व्यवहार की गारण्टी के रूप में जमानत माँगी जाती है। विशुद्ध रूप से जो साहित्यिक पत्रिकाएँ हैं, उन्हें भी सरकारी दखलंदाजी और अड़ंगेबाजी का शिकार होना पड़ रहा है। दो विशुद्ध साहित्यक मासिक

पत्रिकाओं 'हंस' और 'भारतीय साहित्य' से अग्रिम जमानत माँगी गयी है। 'भारतीय साहित्य' विभिन्न भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य को एक मंच पर लाने के उद्देश्य से प्रकाशित होता है। अग्रिम जमानत के बाद में जब्त किये जाने की बात भी असामान्य नहीं है। हाल में बंगला दैनिक आनन्द बाजार पत्रिका को 'साहित्य पर सरकारी जुल्म' पर टिप्पणी करने के लिए अपनी जमानत खोनी पड़ी है। सम्पादक और प्रकाशक ही नहीं, छापेखाने के मालिक तक को दोषी ठहराया जाता है। इसका नतीजा यह हुआ है कि मजदूर संगठन आदि आन्दोलन, जिनके साधन अत्यन्त सीमित हैं, अपनी पत्रिकाएँ छाप नहीं पाते। उन्हें छापेखाने के मालिक को छापने के लिए राजी करने में बहुत दिक्कत होती है। इन कानूनों की वजह से बहुत बड़ी संख्या में अखबार और पत्रिकाएँ बंद हो गयी हैं। सरकारी सूचना के ही अनुसार इनकी संख्या 348 है। प्रेस कानूनों के उल्लंघन पर अक्सर गिरफ्तारी होती है। ऐसी भी घटनाएँ हुई हैं जब सार्वजनिक सभा की सूचना प्रकाशित करने पर नोटिस के प्रकाशक को छह महीने की कड़ी कैद की सजा दी गयी है। कानून की नजरों में ऐसी सूचना को भी समाचारी परचा (न्यूज-शीट) माना जाता है और उसे छापने के लिए सरकार से पहले इजाजत लेना जरूरी है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के विदेश विभाग द्वारा प्रकाशित की जाने वाली समाचार-चिट्ठी (न्यूजलेटर) को भी कानून के तहत माना गया और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर पर छापा मारा गया तथा कई तरह की साइक्लोस्टाइल सामग्री जब्त की गयी।

बंगाल में तो प्रेस पर एकदम गलाघोंटू प्रतिबंध लगाये गये हैं। एक प्रेस अफसर बैठाया गया है, जो सारे प्रेस पर अपनी काली छाया डाले हुए है। इस अफसर ने अपने को एक तरह से सभी अखबारों का महासम्पादक (एडीटर-इन-चीफ) बना डाला है। यह अफसर केवल टिप्पणियों से ही नहीं समाचारों से भी छेड़छाड़ करता है और यह बताता है कि कहाँ क्या छापा जायेगा। इनके अलावा यह प्रेस कानून के तहत अखबारों को धमकी देता है कि उनके खिलाफ कार्रवाई की जायेगी। वह सरकारी विज्ञापन बाँटकर अखबारों में सरकारी प्रचार भी शामिल करवाता है।

साहित्य और पुस्तकों पर प्रतिबंध लगाना एक सामान्य बात है। एक तरफ अखिल भारतीय स्तर पर भारत सरकार और दूसरी तरफ प्रांतीय स्तर पर प्रांतीय सरकारें किताबों पर प्रतिबन्ध लगाती हैं। बंगाल में तो एक तरह से पूरे साहित्य पर ही प्रतिबंध है। अगर किसी व्यक्ति के पास ऐसी कोई पुस्तक मिले, जो प्रतिबंधित न होने पर भी पुलिस और मजिस्टर को खतरनाक लगे, तो उसे कैद किया जा सकता है। इस तरह के अपराध के लिए अक्सर एक साल की कैद की सजा दी जाती है।

देश भर में सभा करने और संगठन बनाने की स्वाधीनता का लगातार हनन किया जा रहा है। मजदूरों को सामान्य श्रम कानूनों के तरह हड़ताल करने की इजाजत नहीं है। इसके लिए उन्हें बहुत पहले से प्रबंध विभाग को व्यक्तिगत नोटिस देना जरूरी है। राजनीतिक उद्देश्यों के लिए हड़ताल करना गैर कानूनी है और संगठन (एसोसिएशन) सम्बन्धी विशेष कानूनों के तहत मजदूर संगठनों को धड़ल्ले से गैर कानूनी घोषित किया जा रहा है और ऐंग्लो इंडियन प्रेस भय और आतंक फैलाने में सरकार की पूरी तरह मदद कर रहा है। जैसे ही कोई मजदूर संगठन थोड़ी बहुत सक्रियता दिखाता है वैसे ही अर्ध सरकारी प्रेस क्रान्तिकारी प्रवृत्ति और कम्युनिस्ट प्रभाव की कहानियाँ छापने लगता है। और इसके बाद क्या होता है, यह अनुमान लगाना कठिन नहीं। हाल के वर्षों में रेलवे कर्मचारियों, ट्रामवे कर्मचारियों, कपड़ा मिल मजदूरों और जहाजी मजदूरों के बहुत से यूनियन सरकारी प्रतिबंध के शिकार बने हैं। 1932 के बंगाल सार्वजनिक सुरक्षा अधिनियम को एक गवर्नर तक ने 'हेवी रोलर' कहा था पर इससे भी सरकार को संतोष नहीं हुआ और बंगाल सरकार ने सितम्बर 1936 से खासकर औद्योगिक मजदूरों की सभाओं के बारे में कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर और आस-पास के इलाकों के जिला मजिस्टरों को अतिरिक्त अधिकार प्रदान किये हैं। इस सम्बन्ध में सरकार की विज्ञप्ति में यह भी कहा गया है कि ऐसे संगठनों की, जो दुनिया के अन्य हिस्सों के हिंसक क्रान्तिकारी आंदोलन की भाषा का इस्तेमाल करते हैं, गतिविधि बढ़रही है।

देहातों में सभाएँ जबरन भंग कर दी जाती हैं और गुण्डई की खुली

छूट दी जाती है। यह सब अब अक्सर होता है क्योंकि किसान अपने को संगठित करने लगे हैं और लगान व करों के खिलाफ आंदोलन कर रहे हैं। यह कहने की जरूरत नहीं होनी चाहिए कि लगान और करों का किसानों की सिकुड़ती हुई आमदनी से कोई रिश्ता नहीं है। बिहार में किसानों का असंतोष बढ़रहा है और वहाँ से हाल में ऐसी खबरें मिली हैं कि किसानों की शांतिपूर्ण सभाओं में हाथियों को छोड़ा गया है और किसान नेताओं पर हमला किया गया है।

सत्याग्रह आंदोलन के समय जिन संगठनों को गैर कानूनी घोषित किया गया था उनमें से कई संगठनों पर आज भी प्रतिबन्ध लगा हुआ है। ऐसे संगठनों में कई कांग्रेस कमेटियाँ, स्वयं सेवक दल और छात्र व युवा यूनियन हैं। प्रतिबंध जारी रखने के पक्ष में न कोई तर्क दिया जाता है और न ही कोई कारण बताया जाता है सिर्फ यह दुहरा दिया जाता है कि 'सार्वजनिक शांति के खातिर कारण नहीं बताया जा सकता।' उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत और बंगाल के कई इलाकों में किसी भी प्रकार का राजनीतिक काम करना असंभव है। उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत में तो नागरिक आबादी पर, जिसे सरकार लड़ाकू कबायली जातियाँ कहती है, हवाई जहाज से अक्सर बमबारी की जाती है। इस बमबारी के कारण प्रांत का राजनीतिक जीवन एकदम पंगु और ठप हो गया है।

1936 के साल में देश में नागरिक स्वाधीनता का जबरदस्त हनन हुआ है और कई मामले तो ड्राइफस और टाम मूनी के मामलों जितने गंभीर हुए हैं जिनसे कोई भी राष्ट्र हिल जा सकता है। वर्ष के प्रारम्भ में ही सुभाषचन्द्र बोस को यूरोप से स्वदेश लौटते ही गिरफ्तार कर लिया गया और तब से वे सुदूर कर्सियांग भेज दिये गये हैं। वे कर्सियांग से बाहर नहीं जा सकते। लगातार माँग किये जाने के बावजूद सरकार उन पर अदालत में खुला मुकदमा चलाने से इनकार करती है। केन्द्रीय विधान मंडल के पिछले अधिवेशन में सरकार से जब पूछा गया कि क्या वह सुभाष चन्द्र बोस के खिलाफ कोई प्रमाण न जुटा पाने के कारण मुकदमा चलाने से कतरा रही है तो गृह विभाग के सदस्य (होम मेम्बर) ने हमेशा का वही बचकाना जबाब

दुहराया कि ‘सार्वजनिक हित’ में खुला मुकदमा चलाना उचित नहीं होगा। ‘सार्वजनिक हित’ एक ऐसा सुविधाजनक बहाना बन गया है जिसके सहारे प्रशासन जनता की नागरिक और व्यक्तिगत स्वाधीनता को आसानी से कुचल रहा है। प्रशासन सुभास चन्द्र बोस पर आरोप लगाता है कि वे क्रान्तिकारी क्रिया-कलापों में शामिल हैं। वह यह भी कहता है कि वे एक बहुत ही कुशल संगठन कर्त्ता हैं। भारतीय जनता सुभाष चन्द्र बोस को भारतीय आजादी और कांग्रेस का एक कुशल संगठनकर्त्ता मानती है और उसे यह संदेह है कि इसीलिए सरकार उन पर क्रान्तिकारियों के साथ सम्बन्ध रखने का आरोप लगा रही है। सरकार का तर्क यह है कि ‘सुभाष चन्द्र बोस एक अवांछनीय व्यक्ति हैं और उनके विरुद्ध लगाया गया खास आरोप सही है या गलत, यह कोई मायने नहीं रखता, हमें उन्हें हर हालत में नजरबंद रखना है।’ इसी तरह कम्युनिस्ट और मजदूर कार्यकर्ताओं को जो आतंकवाद की आलोचना करने का कोई भी अवसर नहीं जाने देते, क्रान्तिकारियों के साथ सम्बन्ध रखने के आरोपों का शिकार बनाया जा रहा है और कैद रखा जा रहा है। मेरठ केस में बंदी मुजफ्फर अहमद को इसी कानून का शिकार बनाया गया है और अब्दुल हलीम अभी भी जेल में घुल रहे हैं।

खान अब्दुल गफ्फार खाँ को दो वर्ष की कैद की सजा काटने के बाद छूटते ही 1 अगस्त को आदेश दिया गया कि वे पंजाब और उत्तर पश्चिमी प्रांत की सीमा में कदम न रखें। उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत की सरकार का कहना है कि इस बात को मानने के लिए उसके पास समुचित व उचित कारण है कि गफ्फार खां ने ‘सार्वजनिक शांति के प्रतिकूल कार्य’ किया है। पंजाब सरकार इस मामले में चुप रहना और साफ-साफ कुछ न कहना पसंद करती है। इसलिए उसके पास भी यह मानने के समुचित कारण हैं कि ‘खान अब्दुल गफ्फार खां ने सर्वाजनिक शांति या सुरक्षा के प्रतिकूल कार्य किया है या करने वाले हैं’। मीनू मसानी को 4 सितम्बर को लाहौर पहुँचने पर इन्हीं कारणों के चलते प्रांत से बाहर चले जाने का आदेश दिया गया। खान अब्दुल गफ्फार खां कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य हैं और मीनू मसानी

कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के महामंत्री हैं। कांग्रेस वर्किंग कमेटी और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी दोनों ही खुले और वैध संगठन हैं। यह समझना कठिन है कि पंजाब सरकार गफ्फार खां और मसानी दोनों की संभावित कार्रवाइयों के बारे में इतना निश्चित अनुमान कैसे लगा पायी।

सितम्बर, अक्टूबर और नवम्बर में बंगाल में 3 नजबंद कैदियों ने आत्महत्या की। ये घटनाएँ नजरबंद लोगों की कष्टदायक और यंत्रणामय स्थिति को दुखद रूप से हमारे सामने प्रकट करती हैं। भारतीय नागरिक स्वाधीनता यूनियन के अध्यक्ष विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इन घटनाओं की सार्वजनिक जाँच करने की माँग करते हुए कहा है कि 'बंगाल ने बहुत बरसों से अपने हजारों बेटे-बेटियों को नजरबंदी शिविरों में बिना मुकदमे के कैद रखे जाते हुए और नष्ट किये जाते हुए देखने की यातना को बरदाश्त किया है। उनका जीवन नष्ट कर दिया गया है। उनके परिवार टूट गये हैं। प्रांत और देश पर अन्तहीन पीड़ा व यातना की छाया घनी होती जा रही है।' आत्महत्या करने वाले एक नजरबंद कैदी नवजीवन घोष एक ऐसे परिवार से थे, जो सरकारी दमन और बदले का खास तौर पर शिकार हुआ है। नवजीवन घोष के बड़े भाई विनय जीवन घोष तीन वर्ष तक मिदनापुर कालेज में इतिहास के प्राध्यापक रहे। उन्हें अचानक अक्टूबर 1933 को तुरवातुरत नौकरी से बरखाश्त कर दिया गया। एक और भाई निर्मल जीवन घोष को बोर्ज हत्या कांड के सामले में अक्टूबर 1934 को फाँसी दी गयी। यही नहीं, छोटे भाई ज्योति जीवन घोष भी अप्रैल 1932 से नजरबंद हैं।

ब्रिटिश कामंस सभा में एक सवाल के जवाब से पता लगा कि भाई परमानन्द को जेल में ही रहना होगा क्योंकि उनका 'पर्यात सुधार' नहीं हुआ है। परमानन्द को 22 फरवरी 1915 को लाहौर में गिरफ्तार किया गया था। तब से आज तक अर्थात् 21 साल से कैद हैं। प्रथम लाहौर षड़यन्त्र के रूप में मशहूर मामले के सिलसिले में गिरफ्तार 62 कैदियों में परमानन्द भी एक थे। इन 62 व्यक्तियों में से 43 को जन्म कैद की सजा दी गयी और 8 व्यक्तियों को जिन्होंने दया की अपील नहीं की, फाँसी दे दी गयी। दिसम्बर 1919 को राज क्षमा (एमनेस्टी) के अवसर पर 43 कैदियों में से 28 को

रिहा कर दिया गया। जेल अधिकारियों ने बाकी के 15 कैदियों को रिहा करने की सिफारिश नहीं की। इन 15 कैदियों में से 14 को 1925 से 1929 के बीच भिन्न-भिन्न वर्षों में रिहा कर दिया गया। लेकिन परमानन्द को नहीं। वे कैद के 20 वर्ष पूरे हो जाने के बाद भी बंद हैं जब कि जन्म कैद सामान्य रूप से 20 वर्ष पूरे हो जाने पर समाप्त हो जाती है।

ज्योतिष चन्द्र चक्रवर्ती कलकत्ता के लाखों मामूली आदमियों में से एक हैं। उनके बच्चे को हैजा हुआ और वे सुबह घर से दवा लाने निकले। पुलिस को उन पर शक हुआ और उसने उन्हें बंद कर दिया। चक्रवर्ती ने पुलिस को लाख समझाया पर इसका कोई असर नहीं हुआ। बच्चा मर गया। बाद में विभागीय जाँच का आदेश दिया गया। 8 जुलाई का दिन बंगाल में कानूनों के अमल के मामले में कोई असाधारण दिन नहीं था। यह आम दिनों की तरह एक दिन था। लेकिन रोज लोगों को क्या क्या भुगतना पड़ता है इसका अंदाज 8 जुलाई के कलकत्ता के अखबारों के कुछ समाचारों से होता है। यहाँ हम कुछ समाचार उद्धृत कर रहे हैं।

.......कुमारी लीलावती नाग, एम.ए. को, जो 1931 से नजरबंद हैं, मिदनापुर जेल से ढाका जेल में भेजा गया ताकि वे दो सप्ताह के लिए अपने माता-पिता के पास तीन घण्टे रोज रह सकें, अब वापस मिदनापुर जेल भेज दिया गया है।........बाकरगंज जिले के मनोरंजन गुहा को जिन्हें हाल में अंडमान से चार साल की सख्त कैद की सजा पूरी करने के बाद रिहा किया गया था, मिदनापुर जिले के वीरगंज में ही रहने का आदेश दिया गया है। वे वीरगंज से बाहर नहीं निकल सकते। ....सोम्येन्द्र नाथ ठाकुर को सुभाष बोस को बिना मुकदमा चलाये नजरबंद रखने के विरोध में आयोजित सुभाष दिवस पर भाषण देने पर एक साल की सख्त कैद की सजा दी गयी है। अपने फैसले में मजिस्टर ने कहा 'भाषण की भाषा भड़काने वाली और राजद्रोह फैलाने वाली थी।' ....सूर्यकुमार भट्टाचार्य को, जो पहले एक अंग्रेजी हाईस्कूल में अध्यापक थे, नोआखाली जिले में घूम-घूम कर भाषण देने का काम सौंपा गया है। वे जिले का दौरा करते हैं और आतंकवाद की बुराइयों, बेरोजगारी और कृषि व औद्योगिक उद्यम पर

भाषण देते हैं। यह आदमी किस प्रकार की सरकार-भक्ति का प्रचार करता होगा, यह अंदाज लगाना मुश्किल नहीं है। ....कलकत्ता उच्च न्यायालय ने नजरबन्द ब्रजमाधव दास की, जिन्हें निचली अदालत ने एक साल की सख्त कैद की सजा दी है, याचिका को अस्वीकार कर दिया है। ब्रज माधव दास के खिलाफ अभियोग है कि सरकारी आदेश के बावजूद वे एक दूसरे नजरबंद क्षितीश चन्द्र चक्रवर्ती से 20 अक्टूबर 1935 को मिलते-जुलते और बातचीत करते हुए पाये गये। ....हुगली जूट मिल में उपद्रव करने के अभियोग में चल रहे मामले के 65 अभियुक्तों के वकील ने ब्रिटिश कामंस सभा में उप भारत मन्त्री ने जो वक्तव्य दिया उसे चुनौती दी है। उन्होंने कहा कि यह वक्तव्य रायटर की झूठी और गलत रिपोर्ट पर आधारित है। एक ऐसे मामले के सम्बन्ध में जो अदालत के विचाराधीन है, गलत तथ्य पेश करना आपत्तिजनक है (इस मामले में बाद में कुल मिलाकर 20 साल की सजा दी गयी) ....कोतवाली पुलिस ने बारीसाल में तीन घरों में गैरकानूनी साहित्य की तलाश में छापा मारा। कोई भी आपत्तिजनक सामग्री नहीं मिली और किसी को भी गिरफ्तार नहीं किया गया।

जाहिर है कि इस देश में सरकार पर जनता के लोकतांत्रिक नियंत्रण की बात करना निरर्थक है। केन्द्रीय विधान मंडल के प्रस्तावों की अवहेलना की जा रही है और पिछला अधिवेशन तो वायसराय द्वारा स्थगन प्रस्तावों को नामंजूर करने के लिए खासतौर पर याद किया जायेगा। हाल के भारत सरकार अधिनियम (गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट) के तहत चुनावों में आश्वासनों के विपरीत सरकार की ओर से तरह-तरह से दखलंदाजी की जा रही है। उम्मीदवारों को इस आधार पर कि वे एक साल से भी ज्यादा की सजा पाये हुए हैं, चुनाव लड़ने के अयोग्य घोषित किया जा रहा है। ऐसे सरकारी गश्ती पत्र भी पाये गये हैं, जिनमें जिलों के पुलिस अफसरों को इलाके के कांग्रेसी उम्मीदवारों को हराने में सहायता देने के निर्देश दिये गये हैं। संयुक्त प्रांत, सीमाप्रांत और मद्रास में किसी न किसी कानून के तहत कई सभाओं पर प्रतिबंध लगाया गया है। इस तरह नागरिक स्वाधीनता का हर तरह से हनन हो रहा है। कानून दमनकारी और निरंकुश है। न्याय कठोर

है। प्रशासन अनुमान के आधार पर कार्रवाई करता है। पुलिस नाना रूपों में अत्याचार व ज्यादती करती है। गुण्डई को छूट मिली हुई है। नागरिकों का कोई भी अधिकार सुरक्षित नहीं है।

अमरीकी उपनिवेशों में दमनकारी और अत्याचारी शासन के बारे में अमरीकी यूनियन ने जो कारण बताये हैं, वे याद आते हैं। भारत में दमनकारी शासन के बारे में भी ये ही कारण लागू होते हैं। बागान, रेलवे, जूट, कपड़ा और देशी जहाजरानी उद्योग में ब्रिटिश व्यापारिक व पूँजीवादी हित भीतर तक घुस गये हैं और इसलिए खासकर औद्योगिक मजदूरों के संगठन बनाने और हड़ताल करने के अधिकारों पर हमेशा हमला होता रहता है।

भारत की आजादी का आन्दोलन अब ब्रिटिश साम्राज्यवाद से आमने-सामने की टक्कर लेने के चरण में पहुँच गया है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अब जनता के अधिकारों की तनिक भी परवाह नहीं हो सकती। देश की बढ़ती गरीबी और उसकी जनता का अनवरत अपमान राष्ट्रीय आन्दोलन को एक वैकल्पिक समाज के निर्माण के लिए और मौजूदा व्यवस्था के आगे किसी भी हालत में न झुकने को तत्पर कर रहा है। नये समाज की आकांक्षा और मौजूदा व्यवस्था के प्रति घृणा आज जितनी बलवती पहले कभी नहीं थी। इस आकांक्षा और घृणा का गिरफ्तारियों और प्रतिबंधों के रूप में निर्दयता पूर्वक जबाब दिया जा रहा है।

इसलिए यह सोचना एकदम गलत है कि दमनकारी शासन खुद-ब-खुद ढील लायेगा या उदार बनेगा। पुलिस राज (पुलिस स्टेट) स्थायी बन गया है। दिखावे के तौर पर कभी कुछ नजरबंदों को ज्यादातर शर्तों पर या औद्योगिक केन्द्रों में प्रशिक्षण देने के आधार पर रिहा किया जाता है लेकिन दूसरी तरफ नित नयी गिरफ्तारियाँ होती हैं। कुछ लोगों को अपने इलाकों से बाहर नहीं जाने दिया जाता और कुछ लोगों को खास इलाकों में प्रवेश नहीं करने दिया जाता। कांग्रेस और अन्य व्यक्तियों द्वारा दमनकारी कानूनों की कार्य प्रणाली के बारे में जानने की कोशिशें बेकार साबित हुई हैं क्योंकि इस तरह की जानकारी पर सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया है। अदालतें बरी कर

देती हैं पर प्रशासन गिरफ्तार कर लेता है। इस तरह न्याय की दिखावटी उदारता प्रशासकीय आदेशों के चलते पूरी तरह बेमानी हो जाती है। देश पर दमनकारी शासन का शिकंजा तभी ढीला हो सकता है जब कि जनता अपने नागरिक अधिकारों के लिए जोरदार माँग करे और राज्य की सत्ता को नियंत्रित करने के लिए आन्दोलन छेड़े।

आज भारत जुल्मी और अत्याचारी शासन के साये में रह रहा है, और इससे भी बुरी बात तो यह है कि वह इस जुल्मी और अत्याचारी शासन से भयभीत है। ऐसे में हर तरह का काम, चाहे वह राजनीतिक हो या सामाजिक बेकार और निस्तेज हो जाता है। विचार कला के क्षेत्र में भी यही होता है। दुनिया भर में आज नागरिक स्वाधीनता की हिफाजत की लड़ाई चल रही है। भारतीय नागरिक स्वाधीनता यूनियन (इण्डियन सिविल लिबरटीज यूनियन) इस लड़ाई का नया योद्धा है लेकिन उसका काम अन्य देशों के यूनियन की तुलना में कहीं ज्यादा है।

परिशिष्ट-2

जवाहरलाल नेहरू की भूमिका

हाल के महीनों में भारत में नागरिक स्वाधीनता की बहुत चर्चा रही है। यह कोई अचरज की बात नहीं क्योंकि नागरिक स्वाधीनता का हमारे यहाँ जिस पैमाने पर दमन हो रहा है, वह अब एक भयानक संकट बन गया है। हम सब शिकार हो रहे हैं और सिर्फ अपने स्वार्थ के ही कारण इसका प्रतिकार करने को हमें प्रेरित होना चाहिए था। लेकिन सारी चर्चा के बावजूद बहुत कम लोग ऐसे हैं जो इसके बारे में स्पष्टता से सोचते हैं और इसके पूरे महत्व को समझते हैं। ऐसे-ऐसे सवाल किये जाते हैं जो इस विषय में घोर अज्ञान जाहिर करते हैं। यही नहीं इसके साथ आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों की खिचड़ी पकाने की चेष्टा की जाती है। डॉ0 राममनोहर लोहिया ने नागरिक स्वाधीनता की अवधारणा और पश्चिमी देशों में उसके विकास के बारे में यह पुस्तिका तैयार कर एक बढ़िया काम किया है। मैं आशा करता हूँ कि बहुत सारे लोग इसे पढ़ेंगे और और इससे नागरिक स्वाधीनता के हनन

और राज्य की बढ़ती हुई दखलंदाजी का, जिसने लगभग कुछ भी नहीं छोड़ा है, प्रतिकार करने में हमें मदद मिलेगी।

21 दिसम्बर, 1936 जवाहरलाल नेहरू

परिशिष्ट-3

इल्बर्ट बिल

इल्बर्टबिल : 1882 में लार्डरिपन की प्रेरणा से सर कोर्टनी इल्बर्ट ने एक बिल पेश किया जिसमें भारतीय न्यायाधीशों को यूरोपियनों के मामलों पर विचार और फैसला करने का अधिकार देने की व्यवस्था थी। इस बिल को इल्बर्ट बिल के नाम से जाना जाता है।

यूरोपियनों खासतौर नीलहे साहबों ने इस बिल का जबदस्त विरोध किया और वायसराय को अपहृत करने तक की धमकी दी। भारतीय जनता ने इसके जवाब में बिल के समर्थन में आंदोलन किया। इस बिल से देश का राजनीतिक वातावरण काफी गरम हो उठा। अन्ततः सरकार बहादुर ने यूरोपियनों को खुश करने के लिए बिल में संशोधन किया और यह व्यवस्था की कि यूरोपियनों के मामले पर विचार करने वाली जूरी में आधे लोगों का यूरोपियन होना अनिवार्य है।

परिशिष्ट-4

रोलट ऐक्ट्स

रोलट ऐक्ट्स (अधिनियम) : रोलट अधिनियमों के सरकारी नाम (1) ताजीरात हिन्द व जाब्ता फौजदारी संशोधन अधिनियम, 1919 और (2) फौजदारी कानून एमरजेन्सी अधिनियम, 1919 है। लेकिन ये रोलट ऐक्ट्स के नाम से ही मशहूर हैं। भारत सरकार ने बंगाल और पंजाब में क्रांतिकारी कार्य-कलाप बढ़जाने पर 'राजद्रोह से निपटने' के लिए उच्च न्यायालय के न्यायधीश सर सिडनी रोलट की अध्यक्षता में एक कमेटी

बनायी। इस कमेटी की सिफारिशों पर ताजीरात हिन्द व जाब्ता फौजदारी संशोधन बिल और फौजदारी कानून एमरजेन्सी बिल बनाये गये, जो अप्रैल 1919 में पास हो जाने पर अधिनियम बन गये। सर सिडनी रोलट के नाम पर इन्हें रोलट ऐक्ट्स कहा जाता है।

इन कानूनों के मारफत पुलिस और प्रशासन को मनमाने अधिकार दिये गये। सरकार की आलोचना को ही नहीं साम्प्रदायिक दंगों तक को प्रशासन इन कानूनों के तहत क्रान्तिकारी कार्य-कलाप मान सकता है। इन कानूनों से नागरिक स्वाधीनता को ही एक प्रकार से गैर कानूनी बना दिया गया। कानून के तहत प्रशासकीय अधिकारी के लिए यह जरूरी नहीं रह गया कि वह व्यक्ति को (जिसके विरुद्ध कार्रवाई की जा रही हो) उसके अपराध के सम्बन्ध में जानकारी दे। 'सार्वजनिक सुरक्षा' के हित में 'तथ्यों' को बताना जरूरी नहीं माना गया। इस तरह के कानून की उपयुक्त व उचित प्रक्रियाओं को चलाये बिना ही नागरिक को प्रशासकीय अधिकारी की सनक का शिकार बना दिया गया। भारतीय जनता ने इन कानूनों को 'अपील नहीं, दलील नहीं, वकील नहीं' कानून कहा।

ऐक्ट बनने के पहले जब दोनों बिल जनता के सामने आये तभी से उनके प्रति देश में भयंकर विरोध प्रकट होने लगा। लोगों ने इन्हें 'काले बिल' कहना शुरू कर दिया। गांधी जी के नेतृत्व में देश ने इनके खिलाफ सत्याग्रह करने का निश्चय किया। 24 फरवरी 1919 को गांधीजी के सत्याग्रह आश्रम में 'युद्ध परिषद' की बैठक हुई जिसमें सत्याग्रहियों के लिए निम्न प्रतिज्ञा तैयार की गयी :

'हमारा विवेक और हमारी आत्मा कहती है कि जो दो रोलट बिल बड़ी धारा सभा में पेश किये गये हैं, वे अन्यायपूर्ण हैं। ये न्याय और स्वातंत्र्य सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं तथा जनता और राज्य की सलामती के लिए मनुष्य मात्र के आधारभूत मौलिक अधिकारों का नाश करने वाले हैं। इसलिए हम भी प्रतिज्ञा करते हैं कि अगर इन बिलों को पास कर दिया गया तो हम इनके तहत बनाये जाने वाले कानूनों की सविनय अवज्ञा करेंगे और जब तक ये रद्द नहीं हो जायेंगे तब तक अवज्ञा करते रहेंगे। साथ ही हम यह

भी प्रतिज्ञा करते हैं कि इस लड़ाई के सिलसिले में हम कड़ाई से सत्य का पालन करेंगे और किसी के भी जान-माल की किसी तरह का नुकसान नहीं पहुँचायेंगे'।

सत्याग्रह के प्रतिज्ञा-पत्र का मस्विदा अखबारों को भेजते हुए गाँधीजी ने 26 फरवरी 1919 को लिखा 'रोलट बिलों के विरुद्ध सत्याग्रह प्रतिज्ञा का मस्विदा भेज रहा हूँ। जो कदम (सत्याग्रह) उठाया गया है, वह शायद हिन्दुस्तान के इतिहास में बहुत भारी माना जाय। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि उक्त कदम उठाने में कुछ भी जल्दीबाजी नहीं की गयी है। मैंने खुद तो इसके बारे में विचार करते हुए कई रातें जागते हुए बितायी हैं। इस कार्रवाई के परिणामों का अच्छी तरह अंदाज लगाया है। सरकार की स्थिति का भी उचित अनुमान करने की कोशिश की है परन्तु इन विचित्र बिलों को पेश करने का मुझे कोई उचित प्रयोजन दिखाई नहीं दिया। रोलट कमेटी की रिपोर्ट मैंने पढ़ी है। परन्तु उसी से जिस निर्णय पर कमेटी पहुँची है, मैं उससे बिल्कुल विपरीत फैसले पर पहुँचा हूँ। इस रिपोर्ट पर से तो मैं साफ तौर पर यही निर्णय दूँगा कि गुप्त मारकाट रूपी रोग हिन्दुस्तान में केवल सीमित क्षेत्रों और इक्के-दुक्के लोगों में फैला है।परन्तु इस खतरे से ज्यादा भयंकर खतरा तो ये बिल हैं, जो सारे हिन्दुस्तान पर लागू करने के लिए सोचे गये हैं—जो स्थिति नाखून से सुधर सकती है, उसे सुधारने के लिए ये सरकार के हाथ में कुल्हाड़ा देने वाले हैं।

“......यह कहना भी गलत है कि जब तक राज्य-सत्ता प्राप्त नहीं की जाती तब तक नागरिक स्वाधीनता की रक्षा करने के लिए कुछ भी नहीं किया जा सकता। ऐसा तर्क यह मान कर चलता है कि जब तक राज्य-सत्ता अन्तिम रूप से परास्त नहीं होती तब तक वह मनमानी करती रहेगी। यह एक अतिरंजित कल्पना है जो काफी हद तक सच है लेकिन यह भी एक तथ्य है कि राज्य—सत्ता ऐसे काम करने से हिचकती भी है जिनसे उसे यह लगता है कि नतीजा उल्टा होगा और उसी पर आ पड़ेगी। इसलिए राज्य की व्यावहारिक व वास्तविक सत्ता को संकुचित करने का हर प्रयत्न किया जाना चाहिए। ”

डॉ. राममनोहर लोहिया ने यह पुस्तक 1936 में लिखी और प्रकाशित कराई। इसकी भूमिका जवाहरलाल नेहरू ने लिखी है और नागरिक स्वाधीनता की अवधारणा को इस पुस्तिका के माध्यम से समझाने के लिए लोहिया जी की प्रशंसा की है। सन् 1936 का राजनीतिक परिदृश्य इस पुस्तक में स्पष्ट है जिससे ब्रिटिश सत्ता के क्रूर व्यवहारों और नागरिक स्वाधीनता के संकट का पता चलता है।

यह पुस्तक अंग्रेजी में लिखी गई थी। आपातकाल के मध्य इसका हिंदी रूपान्तरण दिनेश दासगुप्त ने किया और राममनोहर लोहिया प्रकाशन ट्रस्ट, कोलकाता से प्रकाशित कराया। मौजूदा समय का राजनीतिक, सामाजिक परिदृश्य ऐसा है कि यह पुस्तक प्रत्येक बुद्धिजीवी के लिए प्रेरणा का काम करेगी और सत्ता के व्यवहारों को समझने में मदद देगी। साथ ही जनता के प्रतिरोध को वैचारिक संबल प्रदान करने में उपस्कारक होगी।

–प्रो. सोमनाथ त्रिपाठी

मो.08318520178

ई-मेल : somnathsjp@gmail.com

समता साथी संगम, के लिए **प्रो. सोमनाथ त्रिपाठी**, अनुसंधान परिसर, सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी द्वारा प्रकाशित एवं दि महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी द्वारा मुद्रित। कुल प्रतियाँ १०००। मूल्य : रु. १०.०० मात्र